International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030, Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 2; Issue 3; May 2017; Page No. 207-208

संस्कृत–साहित्य में सौन्दर्य परिकल्पना

डॉ0 पल्लवी सिंह
वरिष्ठ प्रवक्ता (संस्कृत), के0 आर0 महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मथुरा, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

समस्त सृष्टि का सृजनकर्त्ता एक है। वह परमशीलवान् परम–शक्तिवान् तथा परम सौन्दर्यवान् है। उसी के अलौकिक अतुल्य, अपूर्व अद्भुत सत्य गुणों का सन्निवेश उसके द्वारा रचित इस अद्भुत संसार में प्रसंगानुकूल हुआ करता है। वस्तुतः शील और शक्ति की तरह सृष्टि में सौन्दर्य की सत्ता सर्वत्र विद्यमान है। इस सौन्दर्य का प्रसार एवं विस्तार केवल मानवीय सौन्दर्य तक ही नहीं है, वरन उसके कर्म में दृश्य एवं दृश्येतर सौन्दर्य सत्ताओं का भी विनियोग है। वस्तुतः मानव मन जिस रूप, जिस वस्तु तथा जिस भाव से आनन्दानुभव करे, वही सौन्दर्य है।

भारतीय वाङ्मय में 'सौन्दर्य' का यथावत,् प्रयोग अधिक पुरातन नहीं है। वेदों और उपनिषदों में उक्त शब्द अपने मौलिक रूप में, प्राप्त नहीं होता है। इस शब्द के स्थान पर सौन्दर्य वाचक व्यंजक शब्दों का तथा इससे सम्बन्धित सूक्तियों का कथन हुआ है। डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा ने कहा है "सुन्दर शब्द को इतिहास से इतना बल मिलता है कि वह वैदिक नहीं है, रूप की नई, यह अवैदिक स्रोतों से विभिन्न संस्कृतियों के टकराव और मिलन की उत्पत्ति स्वरूप इस शब्द की व्युत्पत्ति हुई है।[1] सौन्दर्य शब्द चाहे जिन कारणों एंव स्रोतों से उत्पन्न हो परं सस्कृत वाङ्मय में सौन्दर्य के निम्न पर्यायवाची शब्द व्यवहृत होते हैं –

सुन्दरं, रूधिरं, चारू, सुषमं साधु शोभनम्।
कान्तम् मनोरमं रूच्यं मनोज्ञ मंजु मंजुलम् ।
अभीष्टेऽभीप्सितं हृदयं दयितं वल्लभं प्रियम्।[2]

इन परिगणित शब्दों के अतिरिक्त कुछ शब्द और हैं जो सौन्दर्य के वाचक और भावाभिव्यंजक शब्द के रूप में प्रयुक्त होते हैं। इन शब्दों में ललित, सुष्ठु, काम्य, कमनीय, रमणीय आदि प्रमुख हैं।

वेदों में "सौन्दर्य" या 'सुंन्दर' शब्द का प्रयोग नहीं हुआ परंतु सौन्दर्य – पर्यायों की निबन्धना में वैदिक ऋषियों ने अपनी उदार चेतना का परिचय दिया है। वस्तुतः वैदिक साहित्य आर्यो के सौन्दर्यबोध का पहला सोपान है,उद्गम स्थल है। रूप, चारू, रूचिर वल्गु, प्रिय, 'पेशस्' भद्र, रण्व, चित्र, मधुर श्री या श्रिय आदि सुन्दर वाचक शब्द के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। ऋग्वेद का 'श्रीसूक्त' इसका द्योतक है। डॉ0 फतह सिंह ने सौन्दर्य की ऐतिहासिकता के सम्बन्ध में कहा है कि वेद में सौन्दर्यतत्व को स्वस्ति संज्ञा दी गयी है। अतः वेद में मानव जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य स्वस्तिमान् होता है। 'स्वस्ति' शब्द सु और 'अस्ति' के योग से बना है, जो सुन्दर और सत्ता का द्योतक है। है।[3] काव्यशास्त्र में सौन्दर्य के लिए रमणीय शब्द का प्रयोग है, रमणीयार्थ प्रतिपादकः: शब्दःका प्रयोग है काव्यम्[4] कहकर पण्डिराज जगन्नाथ ने अपने काव्यस्वरूप विवेचन किया है। इनके अतिरिक्त जिन आचार्यों ने इसका प्रयोग किया है वो हैं – वामन, अभिनवगुप्त– और कुन्तक।

वाचस्पत्यम् कोशकार ने 'सुन्दर' को 'सु' उपसर्गपूर्वक 'उन्द्' धातु से 'अरन्' प्रत्यय के योग से सिद्ध किया है।[5] व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है – "सम्यक आर्द्र (गीला) या सरस। अर्थात् मानव को सरस करने वाला सुन्दर कहलाता है।

'सुन्दर' शब्द की सिद्धि भ्वादिगण की टुनादि समृद्धों धातु से भी हो सकती है। 'नन्द' शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'आनन्द या प्रसन्नता। अर्थात् साम्यक् प्रसन्न करने वाला जो मानव को भली भांति प्रसन्न करे उसे सुन्दर या सौन्दर्य युक्त माना गया है।

संसार सान्दर्य का अनुपम आगार है। इस सुन्दर संसार में मनुष्य क्षण–2 सौन्दर्य की मनोहारी छवि को निहारता, निरखता और विस्मय एवं विमुग्ध होकर उसका अनुभावन करते हुए चलता रहता है। सौन्दर्य की परिभाषाएँ भिन्न–भिन्न प्रकार के हुए हैं –

1. केवल रूप आकार एवं ब्राह्य सौन्दर्य बोध।
2. वर्ण सौन्दर्य एवं उपयोगी सौन्दर्य का अन्वेषण।
3. नैतिकता एवं ईश्वरीय शक्ति की स्वीकृति की खोज।
4. अनुभूति परक

संस्कृत साहित्य में सौन्दर्य के आनुभूतिक दृष्टि को स्वीकार किया है–

"भिन्नरूचिर्हि लोक"[6] इस कथन के आधार पर कहा जा सकता है कि संसार में हर व्यक्ति की रूचि भिन्न–भिन्न है। रूचि व्यक्तिगत पहलु है। सौन्दर्य–शास्त्र में यह अनुभूति का विषय है, वहीं साहित्य में यह सौन्दर्य वस्तु का गुण नहीं है। वह तो प्रमाता या द्रष्टा की दृष्टि का, या अनुभूति की संवेदनशील शक्ति में निहित है।

भरतमुनि के रससूत्र के व्याख्याकार, भट्टनायक और अभिनवगुप्त के भरत के रससूत्र "विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगात् रसनिष्पत्तिः[7] – को आत्मपरक माना है। भुक्तिवाद सिद्धान्त के प्रतिपादक भट्टनायक है। उन्होंने रस की स्थिति और भुक्ति की सामाजिक में रवीकारी है। रसानुभूति व्यक्तिनिष्ठ है। उसी प्रकार सौन्दर्यानुभूति भी आनुभूतिक (व्यक्तिनिष्ठ) ही हुई।

भरतमुनि के इसी रस सिद्धान्त की व्याख्या अभिनवगुप्त ने की है। उनका सिद्धान्त अभिव्यक्तिवाद सामाजिक रसानुभूति को मानता है। कतिपय सामालेचक इस मान्यता पर शैव दर्शन का प्रभाव मानते हैं। और इनकी सौन्दर्य दृष्टि आनंद प्रधान हैं और आध्यात्मिक भी।

कालिदास ने बाह्य अलंकरण से रूप सौन्दर्य में विवर्धन माना है परंतु उसके अभाव में सौन्दर्य में न्यूनता नहीं आती। नैसर्गिक सौन्दर्य को प्राथमिकता देते हुए उन्होंने यह माना कि रूप किसी का आश्रय नहीं होता।

"किमिव हि मधुराणाम् मण्डनाकृतीनाम्"[8]

कालिदास का यह विश्वास है कि सुन्दर आकृति सभी अवस्थाओं में और सभी समय सुन्दर ही रहती हैं। सौन्दर्य नैसर्गिक एवं शाश्वत् होता है, व आन्तरिक सौन्दर्य ही वास्तविक एवं मनोहारि होता है।

"प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारूता"[9]

वस्तुतः आंगल भाषा की कहावत है –

"Beauty Lies in the eye's of beholder".

अर्थात् सौन्दर्य वास्तव में सापेक्ष हैं–
यह प्रमादा या द्रष्टा के दृष्टिकोण पर आधारित है। तथा सौन्दर्य भी वही है जो हमें अपने इष्ट के लिए इप्सित बनाये । कालिदास सुन्दर आकृति को सभी अवस्थाओं में और समय सुन्दर ही मानते हैं। अर्थात् वास्तविक सौन्दर्य देश काल की सीमा में बंधित नहीं किया जा सकता। साथ ही यह सार्वदेशिक एवं सांर्वकालिक है।

"अहो। सर्वावस्थासु रमणीयत्वमानुकृति विशेषाणाम्।[10]

अर्थात् जो सुन्दर है उसकी शोभा हर दशा में सुन्दर होती है।
बाह्य सौन्दर्य की अपेक्षा भीतरी सौन्दर्य वर्णन में कवि की अधिक शक्ति का परिचय मिलता है। बाहरी सौन्दर्य भीतरी सौन्दर्य की तुलना में स्थिर निष्प्राण और अपरिवर्त्तनीय है।
भास में अनुभूति को सौन्दर्य का विषय माना है। मन ही किसी वस्तु को बांछनीय और अभिष्ट तथा किसी को परित्याग योग बना देती है।

अतएवं "प्रद्वेषों बहुमानो वा संकल्पात् उपजायते।"

जो हमारा अपना है या जिसके प्रति मन आसक्त हो उसकी हर वस्तु अच्छी है। और जिसके प्रति हम उदासीन हैं उसके प्रति हमारी अनुभूति भी नकारात्मक होती है। द्वेष और आदरभाव मानसिक व्यापार हैं। अतएव सौन्दर्य द्रष्टा के मनः स्थिति की उपज है।
इन विचारों के आधार पर हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि सौन्दर्य अनुभूति व्यक्ति के संस्कारों पर निर्भर हैं।यह व्यक्तिगत अनुभूति है। साथ ही सहज अनुभवगम्य है। सौन्दर्य की श्रीवृद्धि वाह्य सौन्दर्य के साथ आतंरिक सौन्दर्य के सन्निवेश के पश्चात् ही संभव है। यह सौन्दर्य, ईश्वर है वह मंगलकारी है। तभी तो सहजतः वेदों ने स्वीकारा है, सत्यं शिवं सुन्दरं जो सौन्दर्य सत्य है अर्थात् सार्थक है वह मंगलकारी है। सौन्दर्य ही हममें भाव उद्‌बोधित करता है। अतः यह प्रेरक नवीनता को पल्लवित करता सौन्दर्य सर्वप्रिय एवं सर्वग्राह्य है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 हरद्वारीलाल शर्मा, सुन्दरम् – पृ0 103।
2. अमरकोश 3/52–53।
3. डॉ0 फतह सिंह भारतीय सौन्दर्यशास्त्र की भूमिका – पूर्व वीठिका।
4. पण्डित जगन्नाथ – रसगड्‌गाधर।
5. वाचस्पत्यम् पृ0 24।
6. कालिदास रधुवंश – पृ0 24।
7. विभावानुभावव्यभिचारि भावसंयोगात् रसनिष्पत्ति – नाट्यशास्त्र।
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम् चतुर्थ अंक – पृ0 93।
9. कुमारसंभवम् – पंचम सर्ग प्रथम श्लोक।
10. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 203 अंक।
11. स्वप्न्वासदवतम् – नाटक।